विश्व की एक अद्भुत घटना

(श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट के सलाहकार बोर्ड के अधिवेशन में अध्यक्षपदीय उद्बोधन में बाबू जुगलकिशोरजी 'युगल' द्वारा व्यक्त किये गये विचार जन-जन की जानकारी के लिए प्रस्तुत हैं - संजीव गोधा, प्रबंध संपादक)

श्री कुन्दकुन्द कहान दिग. जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट जो काम कर रहा है, उसकी जितनी भी गतिविधियाँ हैं; उनमें यह महाविद्यालय सबसे प्रमुख गतिविधि है। महाविद्यालय और उसके साथ में उन्हीं विद्यार्थियों द्वारा लगाया जानेवाला यह शिविर, जिसमें श्री टोडरमल स्मारक और आदरणीय डॉ. साहब (डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल) का इसकी व्यवस्था में तन-मन से पूरा सहयोग रहता है, तन-मन से और धन से भी पूरा सहयोग रहता है।

ट्रस्ट ने इस महाविद्यालय की स्थापना श्री टोडरमल स्मारक भवन के छत की नीचे की। आदरणीय श्री बाबूभाई की सूझबूझ से तीस वर्ष पहले यह कार्य प्रारम्भ हुआ, लेकिन यदि इस महाविद्यालय की सफलता के लिए कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति, प्रतिभाशाली विद्वान, तत्त्वज्ञ, पूज्य गुरुदेव के तत्त्वों को जिसने जाना है, समझा है - ऐसा पुरुष संचालक के रूप में नहीं मिलता तो क्या होता ?

यद्यपि महाविद्यालय की स्थापना ट्रस्ट के द्वारा हुई और ट्रस्ट ही उसका आर्थिक भार वहन करता है; लेकिन इस महाविद्यालय में छात्रों का आना, उन छात्रों का चुनाव करना, उनके शिक्षण की व्यवस्था करना और फिर शिक्षित होकर उन छात्रों का सारे देश में फैल जाना - ये जो घटना यहाँ जयपुर में हुई है, वह केवल जयपुर की नहीं; लेकिन सममुच सारे विश्व की एक अद्भुत घटना है। ऐसी गतिविधियाँ न तो जैन समाज में आजतक चली और भविष्य की तो मैं क्या कहूँ ?

जीवन्त रहे हमारे डॉ. साहब (डॉ. भारिल्ल) और उनके बड़े भ्राता पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल; जिनके परिश्रम से ही नहीं, उनकी विविधमुखी प्रतिभा से जो छात्र तैयार हुये, वे हमारी समाज के रत्न हैं। हमको पूज्य गुरुदेव के तत्त्वविचार के प्रचार के लिए यही तो जरूरत थी। यह एक बड़ी आवश्यकता की सहज पूर्ति हो रही है।

गुरुदेव श्री कानजी स्वामी एक बड़े महापुरुष तत्त्वसृष्टा हुए हैं। इस युग में यह बात हम किसी को कहे तो कोई माननेवाला नहीं है। लेकिन आज सहजभाव से अध्ययन के लिए छात्र यहाँ आते हैं और पाँच वर्ष तक या उसके आगे भी अध्ययन करते हैं। उनको अध्ययन की श्रृंखला में पूज्य गुरुदेव के तत्त्व का परिज्ञान कराया जाता है और वे उस तत्त्व को सत्य समझकर स्वीकार करते हैं। (शेष पृष्ठ-17 पर ....)

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का , घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : २५ २७९ अंक : ३

प्रवचनसार पद्यानुवाद

मोक्षमार्गप्रज्ञापनाधिकार

स्वाध्याय से जो जानकर निज अर्थ में एकाग्र हैं।
भूतार्थ से वे ही श्रमण स्वाध्याय ही बस श्रेष्ठ है।।२३२।।
जो श्रमण आगमहीन हैं वे स्व-पर को नहिं जानते।
वे कर्मक्षय कैसे करें जो स्व-पर को नहिं जानते।।२३३।।
साधु आगमचक्षु इन्द्रियचक्षु तो सब लोक है।
देव अवधिचक्षु अर सर्वात्मचक्षु सिद्ध हैं।।२३४।।
जिन-आगमों से सिद्ध हों सब अर्थ गुण-पर्यय सहित।
जिन-आगमों से ही श्रमणजन जानकर साधें स्वहित।।२३५।।
जिनागम अनुसार जिनकी दृष्टि न वे असंयमी।
यह जिनागम का कथन है वे श्रमण कैसे हो सकें।।२३६।।
जिनागम से अर्थ का श्रद्धान ना सिद्धि नहीं।
श्रद्धान हो पर असंयत निर्वाण को पाता नहीं।।२३७।।
विज्ञ तीनों गुप्ति से क्षय करें स्वासोच्छ्वास में।
ना अज्ञ उतने कर्म नाशे भव हजार करोड़ में।।२३८।।
देहादि में अणुमात्र मूर्च्छा रहे यदि तो नियम से।
वह सर्व आगम धर भले हो सिद्धि वह पाता नहीं।।२३९।।
अनारंभी त्याग विषय-विरक्त और कषायक्षय।
ही तपोधन संत का सम्पूर्णतः संयम कहा।।३५।।•

• आचार्य जयसेन की टीका में प्राप्त ३५ वीं गाथा

ह्न डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

सम्पादकीय

प्रवचनसार : एक अनुशीलन

(गतांक से आगे)

प्रवचनसार गाथा १६८-१६९

१६६-१६७वीं गाथा में '**आत्मा पुद्गलपिण्डों का कर्ता नहीं है**' ह्न यह सिद्ध करने के उपरान्त अब आगामी गाथाओं में यह सिद्ध करते हैं कि **जिसप्रकार यह आत्मा पुद्गलपिण्डों का कर्ता नहीं है; उसीप्रकार उन्हें लानेवाला भी नहीं है तथा यह आत्मा पुद्गलपिण्डों को कर्मरूप भी नहीं करता।**

गाथायें मूलत: इसप्रकार हैं ह्न

ओगाढगाढणिचिदो पोग्गलकायेहिं सव्वदो लोगो।
सुहुमेहि बादरेहि य अप्पाओग्गेहिं जोग्गेहिं।।१६८।।
कम्मत्तणपाओग्गा खंधा जीवस्स परिणइं पप्पा।
गच्छंति कम्मभावं ण हि ते जीवेण परिणमिदा।।१६९।।

(हरिगीत)

भरा है यह लोक सूक्ष्म-थूल योग्य-अयोग्य जो।
कर्मत्व के वे पौद्गलिक उन खंध के संयोग से।।१६८।।
स्कन्ध जो कर्मत्व के हों योग्य वे जिय परिणति।
पाकर करम में परिणमें न परिणमावे जिय उन्हें।।१६९।।

यह लोक कर्मत्व के योग्य व अयोग्य सूक्ष्म और बादर ह्न पुद्गल स्कन्धों से ठसाठस भरा हुआ है।

जीव की परिणति को निमित्तरूप से प्राप्त करके कर्मत्व के योग्य स्कंध कर्मरूप परिणमित होते हैं; जीव उनको नहीं परिणमाता।

आचार्य अमृतचन्द्र इन गाथाओं के भाव को तत्त्वप्रदीपिका टीका में इसप्रकार स्पष्ट करते हैं ह्न

''अति सूक्ष्म और अति स्थूल न होने से कर्मरूप परिणत होने की शक्तिवाले और अति सूक्ष्म और अति स्थूल होने से कर्मरूप परिणत होने की शक्ति से रहित

पुद्गलस्कन्धों द्वारा अवगाह की विशेषता के कारण परस्पर बाधा किये बिना स्वयमेव सर्वप्रदेशों से लोक ठसाठस भरा हुआ है।

इससे निश्चित होता है कि आत्मा पुद्गलपिण्डों को नहीं लाता।

अब यह स्पष्ट करते हैं कि आत्मा पुद्गलपिण्डों को कर्मरूप नहीं करता। कर्मरूप परिणमित होने की शक्ति संपन्न पुद्गल स्कंध तुल्य क्षेत्रावगाही बाह्य कारणरूप जीव के परिणाममात्र का आश्रय करके स्वयमेव ही कर्मभाव से परिणमित होते हैं। इससे निश्चित होता है कि आत्मा पुद्गलपिण्डों को कर्मरूप करनेवाला नहीं है।''

आचार्य जयसेन तात्पर्यवृत्ति में यद्यपि इन गाथाओं के भाव को तत्त्वप्रदीपिका के अनुसार ही करते हैं, तथापि निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं ह्न

''अब यह अर्थ है कि निश्चय से शुद्धस्वरूप होने पर भी, व्यवहार से कर्मोदय के अधीन होने से पृथ्वी आदि पाँच सूक्ष्म-स्थावरत्व को प्राप्त जीवों से लोक जिसप्रकार भरा रहता है; उसीप्रकार पुद्गलों से भी भरा रहता है।

इससे ज्ञात होता है कि जिस शरीरावगाहक्षेत्र में जीव रहता है; उसी में बंध के योग्य पुद्गल भी रहते हैं; जीव उन्हें बाहर से नहीं लाता।''

इन गाथाओं के भाव को कविवर वृन्दावनदासजी १ दोहा और २ मनहरण छन्दों में इसप्रकार समझाते हैं ह्न

(मनहरण कवित्त)

लोकाकाश के असंख प्रदेश प्रदेश प्रति,
कारमानवर्गना भरी है पुद्गल की।
सूच्छिम और बादर अनंतानंत सर्वठौर,
अति अवगाढागाढ संधिमाहिं झलकी।।
आठ कर्मरूप परिनमन सुभाव लियैं,
आतमा के गहन करन जोग बल की।
तेईस विकार उपयोग को संजोग पाय,
कर्मपिंड होय बधै रहै संग ललकी।।५१।।

अनंतानंत सूक्ष्म और बादर पौद्गलिक कार्माण वर्गणायें लोकाकाश के असंख्य प्रदेशों में प्रदेश-प्रदेश में ठसा-ठस भरी हुई हैं। आठ कर्मरूप परिणमनस्वभाव को धारण करनेवाली वे वर्गणायें आत्मा के विकारी उपयोग का संयोग पाकर कर्मपिंड होकर आत्मा के साथ बंधी रहती हैं।

(दोहा)

तातैं पुद्गल करम को, आतम करता नाहिं।
भूल भावतैं जीव कै, करम धूलि लपटाहिं।।५२।।

इसलिए पौद्गलिक कर्मों का कर्ता आत्मा नहीं है। आत्मा की भूलरूप भावों का निमित्त पाकर आत्मा से कर्मरूप धूल लिपट जाती है।

(मनहरण कवित्त)

कर्मरूप होन की सुभाव शक्ति जामैं वसै,
ऐसे जे जगत माहिं पुग्गल के खंध हैं।
तेई जब जगतनिवासी जग जीवनि के,
परिनाम अशुद्ध को पावैं सनबंध हैं।।
तबै ताईं काल कर्मरूप परिनवैं सोई,
ऐसो वृन्द अनादि तैं चलो आवै धंध है।
ते वै कर्मपिंड आतमा ने प्रनवाये नाहिं,
पुग्गल के खंध ही सों पुग्गल को बंध है।।५३।।

जिनमें कर्मरूप परिणमन की स्वभाविक शक्ति रहती है; जगत में ऐसे जो पुद्गल के स्कंध हैं; वे ही संसारी जीवों के अशुद्ध परिणामों का निमित्त पाकर उसीसमय कर्मरूप परिणमित होकर जीवों से बंध जाते हैं।

वृन्दावन कवि कहते हैं कि इसप्रकार का धंधा अनादिकाल से चला आ रहा है।

वस्तुत: बात यह है कि उन कर्मपिण्डों को आत्मा ने परिणमित नहीं किया; इसलिए यह नक्की है कि पुद्गल का बंध पुद्गल के साथ ही है; आत्मा के साथ नहीं।

आ.सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी इन गाथाओं का भाव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं ह्न

''कर्म होने योग्य परमाणु अतिसूक्ष्म नहीं होते; क्योंकि कर्म अनंत परमाणुओं का जत्था है। एक परमाणु से लेकर असंख्य परमाणु तक कर्मरूप होने लायक नहीं है। अनंत परमाणु मिलकर कर्मरूप परिणमते हैं।

इसीप्रकार से अतिस्थूलरूप परमाणु भी कर्मरूप नहीं परिणमते। जैसे कर्म के परमाणु अति सूक्ष्म नहीं होते, वैसे ही अति स्थूल भी नहीं होते।

कर्मरूप परिणमना अथवा नहीं परिणमना तो परमाणुओं की योग्यता है। यह परमाणु की समय-समय की योग्यता की बात है।[१]

१. दिव्यध्वनिसार भाग-४, पृष्ठ-९६

जिसप्रकार मकान बनाने के लिए गाँव के बाहर से लकड़ी लानी पड़ती है; उसीप्रकार आत्मा राग-द्वेष करे तब कर्म के लकड़े बाहर से लाने पड़ते हों ह्न ऐसा नहीं है। जीव जितनी मात्रा में रागद्वेष करे, उतनी मात्रा में कर्म के लायक, उतने परमाणु अपने कारण से परिणमते हैं। आत्मा उन परमाणुओं को बाहर से नहीं लाता।[१]

कर्मरूप परिणमने की योग्यतावाले पुद्गल स्कंध जीव के साथ एक क्षेत्रावगाही होते हैं। वे जीव के परिणामों का निमित्त पाकर कर्मरूप परिणमते हैं। उन स्कंधों का ज्ञानावरणादिप्रकृतिरूप परिणमना अंतरंग साधन है और जीव के परिणाम मात्र बाह्य साधन हैं।

दोनों का स्वतंत्र परिणमन एक ही समय में है, कालभेद नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि आत्मा पुद्गलपिण्डों को कर्मरूप नहीं परिणमाता।

एक क्षेत्र में रहने वाले जीव के विकारी परिणाम को निमित्त मात्र बनाकर कर्म के योग्य पुद्गल अपनी अंतरंग शक्ति से ज्ञानावरणादि कर्मरूप से परिणम जाते हैं। जीव उनको परिणमाता नहीं है।[२]''

इसप्रकार इन गाथाओं में और उनकी टीका में यह कहा गया है कि जिसप्रकार यह लोक अनन्त जीवों से ठसाठस भरा हुआ है; उसीप्रकार अनन्त कार्मण वर्गणाओं से भी भरा हुआ है; इसलिए जब आत्मा के रागादिभावों का निमित्त पाकर कार्मण-वर्गणायें अपनी पर्यायगत योग्यता से कर्मरूप परिणमित होती हैं; तब उन वर्गणाओं को दूसरी जगह से नहीं लानी पड़ती है; अपितु जहाँ जीव है, उसी स्थान से स्थित कार्मणवर्गणायें ही कर्मरूप परिणमित हो जाती हैं।

इसप्रकार यह सुनिश्चित हुआ कि न तो आत्मा पौद्गलिक कार्मणवर्गणाओं को कर्मरूप परिणमाता है और न उन्हें कहीं से लाता ही है। वहीं स्थित वे कार्मण वर्गणायें आत्मा के रागादिभावों का निमित्त पाकर कर्मरूप परिणमित हो जाती हैं, आत्मा से बंध जाती हैं ह्न ऐसा ही सहज निमित्त-नैमित्तिक भाव बन रहा है।

प्रवचनसार गाथा १७०-७१

'आत्मा न तो पुद्गल कर्मों का कर्ता ही है और न उन्हें कहीं से लाता ही है' ह्न विगत गाथाओं में यह सिद्ध करने के उपरान्त अब इन गाथाओं में यह समझाते हैं कि औदारिक आदि शरीर पौद्गलिक हैं और वे जीव के साथ स्वयं बद्ध होते हैं।

१. दिव्यध्वनिसार भाग-४, पृष्ठ-९६ २. वही, पृष्ठ-९७

गाथायें मूलत: इसप्रकार हैं ह्न

ते ते कम्मत्तगदा पोग्गलकाया पुणो वि जीवस्स।
संजायंते देहा देहंतरसंकमं पप्पा ।।१७०।।
ओरालिओ य देहो देहो वेउव्विओ य तेजसिओ।
आहारय कम्मइओ पोग्गलदव्वप्पगा सव्वे ।।१७१।।

(हरिगीत)

कर्मत्वगत जड़पिण्ड पुद्गल देह से देहान्तर।
को प्राप्त करके देह बनते पुन-पुन: वे जीव की ।।१७०।।
यह देह औदारिक तथा हो वैक्रियक या कार्मण।
तेजस अहारक पाँच जो वे सभी पुद्गलद्रव्यमय ।।१७१।।

कर्मरूप परिणत वे-वे पुद्गलपिण्ड देहान्तररूप परिवर्तन को प्राप्त करके पुन: पुन: शरीर होते हैं।

औदारिक शरीर, वैक्रियिक शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर और कार्मण शरीर ह्न ये सभी पुद्गलद्रव्यात्मक हैं।

इन गाथाओं का भाव आचार्य अमृतचन्द्र तत्त्वप्रदीपिका टीका में संक्षेप में इसप्रकार समझाते हैं ह्न

''जिस जीव के परिणामों को निमित्तमात्र करके जो-जो पुद्गलकाय (पुद्गल-पिण्ड) स्वयमेव कर्मरूप परिणमित होते हैं; अनादि संततिरूप प्रवर्तमान देहान्तर (भवान्तर) रूप परिवर्तन का आश्रय लेकर वे-वे पुद्गलकाय स्वयमेव शरीर बनते हैं। इससे निश्चित होता है कि कर्मरूप परिणत पुद्गलद्रव्यात्मक शरीर का कर्ता आत्मा नहीं है।

औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर पुद्गलद्रव्यात्मक हैं। इससे निश्चित होता है कि शरीर आत्मा नहीं है।''

आचार्य जयसेन तात्पर्यवृत्ति टीका में उक्त गाथाओं का अर्थ तत्त्वप्रदीपिका के समान ही करते हैं, पर निष्कर्ष के रूप में इससे क्या कहा गया ह्न ऐसा प्रश्न उठाकर उसके उत्तर में लिखते हैं कि औदारिक शरीर नामक नामकर्म रहित परमात्मा को प्राप्त न करनेवाले अज्ञानी जीवों के द्वारा उपार्जित औदारिक शरीर नामकर्म उन्हें भवान्तर में प्राप्त होकर उदय में आते हैं; उनके उदय से नोकर्म पुद्गल औदारिकादि शरीर के आकार में स्वयं ही परिणमित होते हैं।

यही कारण है कि जीव औदारिक आदि शरीरों का कर्ता नहीं होता।

कविवर वृन्दावनदासजी इन गाथाओं का भाव २ छन्दों में इसप्रकार प्रस्तुत करते हैं ह्न

(मनहरण कवित्त)

जे जे दर्वकर्म परिनये रहे पुग्गल के,
कारमानवर्गना सुशक्ति गुप्त धरिके।
तेई फेर जीव के शरीराकार होहि सब,
देहान्तर जोग पाये शक्त व्यक्त करिके।।
जैसे बटबीज में सुभाव शक्ति वृच्छ की सो,
वटाकार होत वही शक्ति को उछरिके।
ऐसे दर्वकर्म बीजरूप लखो वृन्दावन,
ताही को सुफल देह जानों मर्म हरिके।।५४।।
औदारिक देह जो विराजै नरतीरक के,
नानाभाँति तास के अकार की है रचना।
तथा वैयक्रीयक शरीर देव-नारकी के,
जथाजोग ताहू के अकार की है रचना।।
तैजस शरीर जो शुभाशुभ विभेद औ,
अहारक तथैव कारमान की विरचना।
ये तो सर्व पुग्गल दरव के बने हैं पिंड,
यातैं चिदानंद भिन्न ताहीसों परचना।।५५।।

गुप्त शक्ति की धारक पौद्गलिक कार्मण वर्गणायें जिन-जिन द्रव्यकर्मों रूप परिणमित हुई हैं; उनके उदय में आने पर आहारादि वर्गणायें औदारिकादि शरीररूप परिणमित होकर भवान्तर में भी देहादिरूप परिणमित हो जाती है।

जिसप्रकार वटवृक्ष होने की शक्ति वटबीज में विद्यमान रहती है और वह समय पर उल्लसित होकर वटवृक्षरूप हो जाती है; उसीप्रकार द्रव्यकर्म को बीजरूप जानना चाहिए और उसके सुफल के रूप में इस देह को जानना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि नोकर्मरूप देह देह नामक नामकर्म के उदय का परिणाम है।

जिसकी रचना अनेक प्रकार की होती है ह्न ऐसा औदारिक शरीर मनुष्य और तिर्यंच के होता है। यथायोग्य है रचना जिसकी ह्न ऐसा वैक्रियिक शरीर देव और

नारकियों को होता है। शुभ और अशुभ के भेद से तैजस शरीर दो प्रकार का होता है। आहारक और कार्मण शरीर की भी रचना विशेषप्रकार से होती है।

उक्त सभी शरीर तो पुद्गल के पिण्ड हैं और भगवान आत्मा की संरचना इनसे पूर्णत: भिन्न ही है।

इन गाथाओं के भाव को आ.सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी इसप्रकार स्पष्ट करते हैं ह्न

''यहाँ मुख्यता से शरीर की बात की है, उसमें मन, वाणी के परमाणु भी साथ ले लेना चाहिए। अतः जो परमाणु मनरूप अथवा वाणीरूप परिणमते हैं, उसमें भी कर्म निमित्तरूप होता है।[१]

यहाँ तो शरीर, मन, वाणी आदि नोकर्म के कारणरूप से कर्म पुद्गल ही लिए हैं, पर आत्मा को निमित्त रूप से भी नहीं कहा। अतः आत्मा उनका कर्त्ता नहीं है।[२]

जैसे दिव्यध्वनि अपने कारण से परिणमती है; वैसे ही संसारी जीव की भाषा के पुद्गल भी अपने स्वयं के परिणमन के स्वकाल में वाणीरूप होकर निकलते हैं।

अनंतवीर्यवाले तीर्थंकर भगवान भी भाषा की पर्याय नहीं कर सकते हैं तो फिर उनसे अनंतवें भाग जिसका वीर्य है ह्न ऐसा संसारी जीव भाषा की पर्याय को बना सके ह्न यह कैसे संभव है।[३]

जैन सिद्धान्त प्रवेशिका में कहा है कि मनुष्य तथा तिर्यंच का औदारिक शरीर होता है, नारकी तथा देव का वैक्रियिक शरीर होता है तथा किन्हीं मुनिराज का आहारक शरीर होता है, किन्तु तैजस व कार्मण शरीर तो सभी संसारी जीवों का ही होता है और यहाँ कहते हैं कि जीव को शरीर होता ही नहीं, शरीर तो पुद्गल जड़ परमाणु का बना हुआ है।

सिद्धान्त प्रवेशिका में संसारी दशा में शरीर के संयोग का ज्ञान कराया है; किन्तु शरीर आत्मा का है, यहाँ ऐसा कहने का आशय नहीं है। पाँच शरीर पुद्गल परमाणुओं से बने हैं। रूखे-चिकनेपन के कारण पुद्गल स्कंध बने हैं, अवगाहना के कारण स्थूल सूक्ष्म बने हैं, आकार के कारण भिन्न-भिन्न संस्थान होता है।

कर्म की योग्यता के कारण स्कंध कर्मरूप होते हैं और कर्म का निमित्त पाकर जुदे-जुदे शरीर होते हैं। आत्मा उनका कर्ता नहीं, इसलिए आत्मा शरीर नहीं ह्न ऐसा निश्चित होता है।[४]''

---

१. दिव्यध्वनिसार भाग-४, पृष्ठ-९८
२. वही, पृष्ठ-९८
३. वही, पृष्ठ-९९
४. वही, पृष्ठ-१००

उक्त सम्पूर्ण कथन का सार यह है कि ये औदारिक आदि शरीर शरीर नामक नामकर्म के उदयानुसार होनेवाले नोकर्मरूप परिणमन हैं। उक्त नामकर्म भी पौद्गलिक है और उसके उदयानुसार होनेवाला नोकर्मरूप शरीर भी पूर्णत: पुद्गल की रचना है; अत: इनका कर्ता-धर्ता पुद्गल ही है, आत्मा नहीं।

वस्तुत: बात यह है कि यह ज्ञानानन्दस्वभावी भगवान आत्मा और मन-वचन-कायरूप औदारिक शरीर पूर्णत: भिन्न-भिन्न हैं; अत: वे शरीरादि स्वयं ही स्वयं के स्वामी हैं और स्वयं ही स्वयं के कर्ता-भोक्ता हैं।

प्रवचनसार गाथा १७२

विगत गाथा में 'औदारिक आदि शरीर आत्मा नहीं है' ह्न यह स्पष्ट करने के उपरान्त अब यह बताते हैं कि शरीरादि सर्व परद्रव्यों से आत्मा को भिन्न बतानेवाला आत्मा का असाधारण स्वलक्षण क्या है ?

गाथा मूलत: इसप्रकार है ह्न

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ।।१७२।।

(हरिगीत)

चैतन्य गुणमय आतमा अव्यक्त अरस अरूप है।
जानो अलिंगग्रहण इसे यह अनिर्दिष्ट अशब्द है।।१७२।।

जीव को ऐसा जानो कि वह अरस है, अरूप है, अगंध है, अव्यक्त है, अशब्द है, अनिर्दिष्टसंस्थान है, चेतनागुण से युक्त है और अलिंगग्रहण है।

आत्मा के स्वरूप को स्पष्ट करनेवाली सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण यह गाथा, वह गाथा है कि जो आचार्य कुन्दकुन्द के पाँचों ग्रन्थों में पाई जाती है। समयसार में ४९वीं, नियमसार में ४६वीं, पंचास्तिकाय में १२७वीं, अष्टपाहुड़ के भावपाहुड़ में ६४वीं गाथा है और इस प्रवचनसार में यह १७२वीं गाथा तो है ही।

आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों में यह गाथा पाई जाती है। धवल के तीसरे भाग में भी यह गाथा है और पद्मनन्दी पंचविंशतिका एवं द्रव्यसंग्रहादि में यह उद्धृत की गई है।

इसप्रकार आत्मा का स्वरूप प्रतिपादन करने वाली यह गाथा जिनागम की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गाथा है।

इस गाथा में अरस, अरूप, अगंध आदि आठ विशेषणों के माध्यम से आत्मा का स्वरूप समझाया गया है।

यह बात भी किसी से छिपी नहीं है कि आचार्य अमृतचन्द्र ने कुन्दकुन्दत्रयी पर महत्त्वपूर्ण टीकायें लिखी हैं। समयसार पर आत्मख्याति, पंचास्तिकाय पर समय व्याख्या और इस प्रवचनसार पर तत्त्वप्रदीपिका नामक टीकायें लिखी हैं।

उन्होंने अपनी इन तीनों टीकाओं में इस गाथा का अर्थ भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है; जो अपने-आप में अद्भुत है, मूलत: पठनीय है, मननीय है, गहराई से अध्ययन करने योग्य है और विशेष प्रयोजन की सिद्धि करनेवाला है।

समयसार की आत्मख्याति टीका में अरस, अरूप, अगंध, अव्यक्त और अशब्द पदों की व्याख्या पर जोर दिया गया है, उनमें से प्रत्येक के छह-छह अर्थ किये हैं और अनिर्दिष्टसंस्थान के चार अर्थ किये हैं; पर अलिंगग्रहण का सामान्य-सा एक अर्थ करके ही छोड़ दिया है; परन्तु प्रवचनसार की इस तत्त्वप्रदीपिका टीका में स्थिति इससे एकदम उल्टी है। इसमें अरसादि विशेषणों का एक-एक अर्थ ही किया गया है, जबकि अलिंगग्रहण का एक सामान्य अर्थ के अतिरिक्त बीस अर्थ और किये हैं; जो अपने-आप में अद्भुत हैं, गहराई से समझने योग्य हैं, मंथन करने योग्य हैं।

तत्त्वप्रदीपिका में किये विशेष अर्थों पर विचार करने के पूर्व एक बात और भी जान लेना जरूरी है और वह यह कि मूल गाथा में पुद्गल के स्पर्श गुण का निषेध करनेवाला कोई शब्द नहीं है, इसकारण उसे आत्मख्याति में छन्दानुरोध से छूटा हुआ मानकर शामिल कर लिया गया है और उसके भी छह अर्थ किये हैं; परन्तु प्रवचनसार की इस तत्त्वप्रदीपिका टीका में अव्यक्त का ही अर्थ अस्पर्श किया है। जबकि आत्मख्याति में अव्यक्त के अलग से चार अर्थ किये गये हैं।

उपर्युक्त सामान्य जानकारी देने के बाद अब यह स्पष्ट करते हैं कि इस गाथा के भाव को आचार्य अमृतचन्द्र इस ग्रंथ प्रवचनसार की तत्त्वप्रदीपिका टीका में किसप्रकार करते हैं। टीका का हिन्दी अनुवाद इसप्रकार है ह्न

''रस गुण के अभावरूप स्वभाववाला होने से, रूप गुण के अभावरूप स्वभाववाला होने से, गंध गुण के अभावरूप स्वभाववाला होने से, स्पर्शगुणरूप व्यक्तता के अभावरूप स्वभाववाला होने से, शब्दपर्याय के अभावरूप स्वभाववाला होने से तथा इन सबके कारण लिंग के द्वारा अग्राह्य होने से और सर्व संस्थानों के

अभावरूप स्वभाववाला होने से आत्मा अरस है, अरूप है, अगंध है, अस्पर्श (अव्यक्त) है, अशब्द है, अलिंगग्रहण है और अनिर्दिष्ट संस्थानवाला है; इसकारण यह आत्मा पुद्गल से भिन्न है।

पुद्गल और अपुद्गल ह्न ऐसे समस्त अजीव द्रव्यों से विभाग का मूल साधन तो चेतनागुणवाला होना है। मात्र वही स्वजीवद्रव्याश्रित होने से स्वलक्षणपने को धारण करता हुआ आत्मा को अन्य द्रव्यों से भिन्न सिद्ध करता है।

यद्यपि यहाँ **अलिंगग्राह्य** कहा जाना चाहिए था; तथापि यहाँ **अलिंगग्रहण** कहा गया है। यह इस बात का संकेत है कि इस विशेषण के अनेक अर्थ हैं।

वे अनेक अर्थ इसप्रकार हैं ह्न

१. ज्ञायक आत्मा लिंगों अर्थात् इन्द्रियों के द्वारा नहीं जानता; इसलिए अलिंगग्रहण है। इसप्रकार आत्मा अतीन्द्रियज्ञानमय है ह्न इस अर्थ की प्राप्ति होती है।

२. जिसे लिंगों अर्थात् इन्द्रियों द्वारा नहीं जाना जाता, वह आत्मा अलिंगग्रहण है। इसप्रकार आत्मा इन्द्रिय प्रत्यक्ष का विषय नहीं है ह्न इस अर्थ की प्राप्ति होती है।

३. जिसप्रकार धुयें से अग्नि का ग्रहण (ज्ञान) होता है; उसीप्रकार लिंग अर्थात् इन्द्रियगम्य (इन्द्रियों से जानने योग्य) चिन्ह द्वारा जिसका ग्रहण नहीं होता, वह आत्मा अलिंगग्रहण है। इसप्रकार आत्मा इन्द्रियप्रत्यक्षपूर्वक अनुमान का विषय नहीं है ह्न इस अर्थ की प्राप्ति होती है।

४. दूसरों के द्वारा मात्र लिंग (अनुमान) द्वारा ही जिसका ग्रहण नहीं होता; वह आत्मा अलिंगग्रहण है। इसप्रकार आत्मा केवल अनुमान से ही ज्ञात करने योग्य नहीं है ह्न इस अर्थ की प्राप्ति होती है; क्योंकि आत्मा अनुमान के अतिरिक्त प्रत्यक्षादि प्रमाणों से भी जाना जाता है।

५. जो मात्र लिंग अर्थात् अनुमान से ही पर का ग्रहण (ज्ञान) नहीं करता; इसलिए अलिंगग्रहण है। इसप्रकार आत्मा मात्र अनुमाता (अनुमान करनेवाला) ही नहीं है ह्न इस अर्थ की प्राप्ति होती है; क्योंकि वह आत्मा प्रत्यक्षादि प्रमाणों से भी पर को जानता है।

६. आत्मा लिंग से नहीं, स्वभाव से ही ग्रहण करता है अर्थात् जानता है; इसप्रकार आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञाता है ह्न ऐसे अर्थ की प्राप्ति होती है।

७. जो उपयोगलक्षण लिंग द्वारा ज्ञेय पदार्थों का ग्रहण नहीं करता अर्थात् ज्ञेय

पदार्थों का अवलम्बन नहीं लेता; वह आत्मा अलिंगग्रहण है। इसप्रकार आत्मा के बाह्य पदार्थों के अवलम्बनवाला ज्ञान नहीं है ह्न इस अर्थ की प्राप्ति होती है।

८. जो उपयोगलक्षण लिंग को ग्रहण नहीं करता अर्थात् उपयोगलक्षण लिंग को बाहर से नहीं लाता; वह आत्मा अलिंगग्रहण है। इसप्रकार आत्मा बाहर से नहीं लाये जानेवाले ज्ञानवाला है ह्न ऐसे अर्थ की प्राप्ति होती है।

९. जिसके उपयोगलक्षण लिंग का पर के द्वारा हरण नहीं हो सकता; वह आत्मा अलिंगग्रहण है। इसप्रकार आत्मा के ज्ञान का हरण नहीं किया जा सकता ह्न ऐसे अर्थ की प्राप्ति होती है।

१०. जिसके उपयोगलक्षण लिंग को सूर्य को लगनेवाले ग्रहण के समान ग्रहण नहीं लगता अर्थात् उसमें मलिनता नहीं है, विकार नहीं है; वह आत्मा अलिंगग्रहण है। इसप्रकार आत्मा शुद्धोपयोगस्वभावी है ह्न इस अर्थ की प्राप्ति होती है।

११. जिसके उपयोगलक्षण लिंग द्वारा पौद्गलिक कर्मों का ग्रहण नहीं है; वह आत्मा अलिंगग्रहण है। इसप्रकार आत्मा द्रव्यकर्म से असंयुक्त है ह्न ऐसे अर्थ की प्राप्ति होती है।

१२. जिसे लिंग अर्थात् इन्द्रियों द्वारा ग्रहण अर्थात् विषयों का उपभोग नहीं है; वह आत्मा अलिंगग्रहण है। इसप्रकार आत्मा विषयों का उपभोक्ता नहीं है ह्न इस अर्थ की प्राप्ति होती है।

१३. लिंग अर्थात् मन अथवा इन्द्रियादि लक्षणों के द्वारा ग्रहण अर्थात् जीवत्व को धारण किये रहना जिसके नहीं है, वह अलिंगग्रहण है। इसप्रकार आत्मा रज और वीर्य के अनुसार होनेवाला नहीं है ह्न इस अर्थ की प्राप्ति होती है।

१४. लिंग अर्थात् मेहनाकार (पुरुषादि की गुप्तेन्द्रिय के आकार) का ग्रहण जिसके नहीं है; वह अलिंगग्रहण है। इसप्रकार आत्मा लौकिक साधनमात्र नहीं है ह्न इस अर्थ की प्राप्ति होती है।

१५. लिंग अर्थात् अमेहनाकार के द्वारा जिसका ग्रहण अर्थात् लोक में व्यापकत्व नहीं है; वह आत्मा पाखण्डियों के प्रसिद्ध साधनरूप आकारवाला-लोकव्याप्तिवाला नहीं है ह्न ऐसे अर्थ की प्राप्ति होती है।

१६. जो स्त्री, पुरुष और नपुंसक लिंगों (वेदों) को ग्रहण नहीं करता; वह आत्मा अलिंगग्रहण है। इसप्रकार आत्मा द्रव्य से तथा भाव से स्त्री, पुरुष व नपुंसक

नहीं है ह्न इस अर्थ की प्राप्ति होती है।

१७. जिस आत्मा के लिंगों अर्थात् धर्मचिह्नों का ग्रहण नहीं है; वह अलिंगग्रहण है। इसप्रकार आत्मा के बहिरंग यतिलिंगों का अभाव है ह्न इस अर्थ की प्राप्ति होती है।

१८. लिंग अर्थात् गुण, ग्रहण अर्थात् अर्थावबोध (पदार्थज्ञान) जिसके नहीं है, वह आत्मा अलिंगग्रहण है। इसप्रकार आत्मा गुणविशेष से आलिंगित न होनेवाला शुद्धद्रव्य है ह्न ऐसे अर्थ की प्राप्ति होती है।

१९. लिंग अर्थात् पर्याय, ग्रहण अर्थात् अर्थावबोध विशेष जिसके नहीं है, वह आत्मा अलिंगग्रहण है। इसप्रकार आत्मा पर्यायविशेष से आलिंगित न होनेवाला शुद्धद्रव्य है ह्न ऐसे अर्थ की प्राप्ति होती है।

२०. लिंग अर्थात् प्रत्यभिज्ञान का कारण जो ग्रहण अर्थात् अर्थावबोध सामान्य जिसके नहीं है, वह अलिंगग्रहण है। इसप्रकार द्रव्य से नहीं आलिंगित शुद्धपर्याय है ह्न ऐसे अर्थ की प्राप्ति होती है।''

आचार्य जयसेन तात्पर्यवृत्ति में इस गाथा का भाव स्पष्ट करते हुए अलिंगग्रहण पद को छोड़कर शेष पदों का अर्थ तो तत्त्वप्रदीपिका के समान ही करते हैं; पर अलिंगग्रहण का अर्थ करते समय अलिंगग्रहण के अनेक अर्थ करते हुए भी तत्त्वप्रदीपिका के समान २० अर्थ नहीं करते।

वे लिंग शब्द के मुख्यरूप से तीन अर्थ करते हैं ह्न १. इन्द्रियाँ २. अनुमान और ३. चिह्न।

आत्मा न तो मात्र इन्द्रियों द्वारा पर को जानता है और न पर से इन्द्रियों द्वारा जाना जाता है; इसलिए अलिंगग्रहण है अर्थात् अतीन्द्रियज्ञान द्वारा जानता है और अतीन्द्रियज्ञान द्वारा ही जाना जाता है।

इसीप्रकार आत्मा न तो अनुमान द्वारा पर को जानता है और न पर के द्वारा अनुमान से जाना जाता है; इसलिए अलिंगग्रहण है। अतीन्द्रिय ज्ञानमय होने से अतीन्द्रियज्ञान द्वारा ही जानता है और उसी के द्वारा जाना जाता है।

आत्मा न तो किन्हीं चिन्हों द्वारा जानता है और न किन्हीं चिन्हों द्वारा जाना जाता है; अत: अलिंगग्रहण है। अतीन्द्रिय ज्ञानमय होने से उसे चिन्हों द्वारा जानने और चिन्हों द्वारा ही जाने जाने (जानने में आने) की आवश्यकता नहीं है।

(पृष्ठ-4 का शेष .... अद्भुत घटना)

'तुम गुरुदेवश्री कानजी स्वामी की सीमा में आओ' - यह कहे बिना सहज ही वे छात्र डॉ. साहब के प्रयत्न से तैयार होते हैं और गुरुदेव के समर्थक बनते हैं। ''गुरुदेव एक महाप्रतापी पुरुष हुए हैं।'' - ये बात उनके मन में बैठ जाती है। आज जो गुरुदेव की अनेकान्त पद्धति और उसमें सम्यक् एकान्त की शुद्धात्मतत्त्व में विहार करने की प्रवृत्ति को न समझने के कारण सामान्य लोगों से लगाकर और बड़े-बड़े विद्वानों के द्वारा जो भ्रामक प्रचार किया गया; उस भ्रामक प्रचार के कारण जो विरोध प्रारम्भ हुआ, उस विरोध का इस महाविद्यालय के द्वारा स्वाभाविक ही अन्त हुआ है।

गुरुदेव के समर्थक, तत्त्वज्ञान के समर्थक, आगम के समर्थक, दिगम्बर जैनधर्म के समर्थक हजारों विद्यार्थी तैयार हो रहे हैं और वे जहाँ भी जाते हैं, ऊँचे पदों पर पहुँच जाते हैं; क्योंकि सरकार ने भी एक ऐसी व्यवस्था की है कि संस्कृत के परिज्ञान को बढ़ाने के लिए संस्कृत विद्यालय खोले। महाविद्यालय में भी संस्कृत की प्रधानता है। संस्कृत सीखकर वे संस्कृत विद्यालयों, कॉलेजों में, युनिवर्सिटियों में बड़े-बड़े पदों पर पहुँच जाते हैं। वह तत्त्वज्ञान उनके भीतर बैठ गया है, इसलिए वे निरन्तर अपने जीवन में, पूरे जीवन भर उस तत्त्वज्ञान का प्रचार और प्रसार स्वाध्याय के द्वारा, पाठशालाओं के द्वारा, शिविर आदि के द्वारा जहाँ भी रहते हैं, इस गुरुदेव के तत्त्व का प्रचार करते हैं।

पूज्य गुरुदेव और शुद्ध दिगम्बर जैनदर्शन की इससे अधिक प्रभावना क्या हो सकती है ? हम यह कल्पना करें कि तत्त्वज्ञानियों की संख्या बहुत हो तो यह संभव नहीं है। अज्ञानियों का बहुमत रहनेवाला है, पर विजय ज्ञानियों की होनेवाली है।

ज्ञान में कोई बहुमत और अल्पमत नहीं हुआ करता। एक हजार व्यक्तियों में नौ सौ निन्न्यानवें व्यक्ति एक हीरे को काँच कह रहे हो, लेकिन एक व्यक्ति जो जौहरी है, वह कहता है कि यह हीरा है, काँच नहीं तो विजय किसकी हुई ? भगवान महावीर के समय, भगवान आदिनाथ के समय भी उनका विरोध करनेवाले थे, इसलिए यह आश्चर्य करना नहीं है कि लोग गुरुदेव का विरोध क्यों करते हैं ? अज्ञानी का काम ही यही है कि ज्ञानी का विरोध करें।

मैं तो इस महाविद्यालय को एक ऐसी फैक्ट्री मानता हूँ कि जिसमें चौबीस घंटे उत्पादन होता है और आगे की बात को क्या कहें ? लेकिन यह महाविद्यालय और दोनों भारिल्ल बन्धु जीवन्त रहें और इस महाविद्यालय को चलाते रहें।

ये जो छात्र निकल रहे हैं, ऊँचे-ऊँचे पदों पर जा रहे हैं, वह तो लौकिक बात है, लेकिन उनके भीतर जो तत्त्वज्ञान समाविष्ट हुआ है, वह चिर-अनन्त समाविष्ट होता रहे और यह महाविद्यालय कभी विकृत न हो, इसका समापन न हो - ऐसी मंगल कामना करता हूँ। ●

विषयों की रुचि नहीं होती

पूज्यपाद आचार्य श्री देवनन्दि के प्रसिद्ध ग्रन्थ इष्टोपदेश के 38 वें श्लोक पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल श्लोक इसप्रकार है ह्न

यथा यथा न रोचन्ते विषया: सुलभा अपि ।
तथा तथा समायाति संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम् ।।

जैसे-जैसे सुलभ (सहज प्राप्त) इन्द्रिय-विषय रुचिकर नहीं लगते हैं, वैसे-वैसे स्वात्मसंवेदन में उत्तम निजात्मतत्त्व अनुभव में आता है।

(गतांक से आगे...)

धर्मी जीव को अपनी आत्मा में ही अपना धर्म भासित होता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, आनन्द, सुख आदि सभी धर्म की ही पर्यायें हैं। ये धर्म की पर्यायें किसी संयोग, राग अथवा एक समय की पर्याय के अवलम्बन से प्रगट नहीं होतीं; बल्कि त्रिकालीशुद्ध निजपरमात्मतत्त्व के अवलम्बन से प्रगट होती हैं; क्योंकि आत्मवस्तु स्वयं अपने ज्ञान-दर्शनादि अनन्त गुणों से भरी हुई है।

'आत्मा ही परिपूर्ण आनन्दस्वभावी है' ह्न ऐसी श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता का नाम ही धर्म है। जिसे ऐसी श्रद्धा, ज्ञान व स्थिरता होती है, उसे पूर्व पुण्य के कारण सहज प्राप्त हुए इन्द्रिय-विषयों में आनन्द भासित नहीं होता; क्योंकि उसने अनंत आनन्द और सुख से भरी हुई निजात्मलक्ष्मी का अवलोकन कर लिया है।

अज्ञानी ने अनादिकाल से पर का ही अवलोकन किया है। एक समय के लिए भी निजात्मा का अवलोकन नहीं किया; किन्तु जिसने एक समय के लिए अपनी आत्मा का अवलोकन किया, फिर उसे बाह्य जगत और संसार के विषय-भोग रुचिकर नहीं लगते। वास्तव में धर्मी जीव को अन्तर स्वभाव की रुचि जागृत हुई है, इसलिये उसे बाह्य संसार के विषयों में रस/आनन्द भासित नहीं होता, उसे तो निरन्तर यही लगता है कि मैं अपने स्वभाव में कब रमण करूँ ?

धर्मी जीव अन्याय से प्राप्त सुख-सम्पदा को न अपना मानता हैं और न ही उन्हें प्रयोग में लेता हैं। यहाँ तक की पूर्व पुण्योदय से सहज प्राप्त स्वर्ग का इन्द्र पद, इन्द्राणी का संयोग, चक्रवर्ती पद, चक्रवर्ती का वैभव और 96 हजार रानियों का

योग मिलने पर भी उसमें वह सुखबुद्धि नहीं करता ।

समयसार नाटक में पण्डित बनारसीदासजी ने कहा है कि धर्मी पूर्व पुण्य से प्राप्त बाह्य विषय-भोगों को विष्टा के समान जानता है। जिसप्रकार विष्टा त्यागनेयोग्य है; उसीप्रकार धर्मी जीव का लक्ष्य भी विषय भोगों के प्रति हेयरूप/त्याज्यरूप ही होता है। श्रीमद्जी ने 16 वर्ष की आयु में ही लिखा था -

लक्ष्मी बढी अधिकार भी, पर बढ गया क्या बोलिए ?
परिवार और कुटुंब है क्या, वृद्धि नय पर तोलिए ?
संसार का बढना अरे ! नर देह की यह हार है।
नहीं एक क्षण तुझको अरे ! इसका विवेक विचार है।।

पूर्व पुण्योदय से लक्ष्मी बढती है, अधिकार और परिवार आदि भी बढता है; किन्तु उससे जीव को क्या लाभ ? भाई ! अपनी गुण-सम्पदा तो अपने ही पास है, बाह्य पदार्थों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

अशुभ की रुचि तो हेय ही है। लेकिन जिसे शुभभावों में रुचि हैं, उसे शुभ के फल में प्राप्त भोगों में भी रुचि है ही; इसलिये कहा है कि जिसे पुण्य की रुचि है, उसे जड़ की रुचि है। व्रतादिकों के परिणाम पुण्य हैं, विकार हैं, अचेतन हैं, वे चैतन्य-स्वभाव से विरुद्ध विभावभाव हैं। ऐसे विभावों की जिसे रुचि है, उसे भोगों की ही रुचि हैं। वास्तव में देखें तो उसे भव-भ्रमण की ही रुचि है, आत्मा की रुचि है ही नहीं।

धर्मी को परद्रव्य के संयोग और विकल्प आदि नहीं रुचते। पुण्य-पाप के भाव भी जहर जैसे लगते है। मंत्र-तंत्रादि भी दु:खरूप लगते है। वास्तव में अपनी निधि तो अपने में है; अत: उसे बाहर में अन्य कुछ भी सुखरूप भासित ही नहीं होता ।

धर्मी जीव लौकिक उन्नति से अपनी उन्नति नहीं मानता, शरीरादिक की कांति को वह राख समान मानता है। जड़ की सुंदरता से अपनी सुंदरता माने वह तो मूढ है, उसे वास्तव में अपनी सुंदरता का भान ही नहीं है। अपनी आत्मवस्तु पर दृष्टि करते ही ज्ञान-दर्शन का पिण्ड, अनन्त सुख का निधान हाथ में आता है; किन्तु अज्ञानी अपनी वस्तु की ओर देखता भी नहीं है और जिनसे कुछ प्राप्त नहीं होगा - ऐसे जड़ विषयों की ओर सुख की अभिलाषा से ताकता रहता है।

मेरे चैतन्य घर में अनन्त सिद्ध परमात्मा विराजमान हैं - ऐसा जानते हुए धर्मी को बाह्य विषय-कषाय तो बाण की नोंक के समान दु:खदायी लगते है। कुटुंब-

परिवार के कार्य उसे काल (मृत्यु/यम) के समान, सांसारिक आनन्द, कीर्ति आदि मैल के समान और भागोदय (पुण्योदय) विष्टा के समान लगता है।

पुण्य के उदय में मकान, सुन्दर स्त्री, धन-सम्पत्ति आदि अनुकूल सामग्री भले ही प्राप्त हो जाए, लेकिन उससे आत्मा को क्या लाभ? वे वस्तुएँ तो आत्मा में प्रवेश भी नहीं करती; किन्तु उन वस्तुओं के सम्बन्ध से जीव को अन्तर में जो रागभाव पड़ा है, वह वास्तव में दु:खदायी है । इसलिए धर्मी जीव को चक्रवर्ती या इन्द्र पद भी नहीं रुचते । भगवान आत्मा में सत्स्वरूप आनन्द का निधान भरा हुआ है, उसकी दृष्टि-रुचि होने से उसे अन्य कहीं चैन नहीं मिलता, बाह्य कोई विषय रुचिकर नहीं लगते।

इस जीव ने जगत के समस्त पदार्थों को देख लिया, लेकिन कहीं भी सुख नहीं मिला। शास्त्र भी पढ़े, लेकिन आनन्द नहीं मिला; क्योंकि वास्तविक आनन्द तो स्वात्म-संवेदन में है। उसकी प्राप्ति होने पर बाह्य संसार के समस्त विषय-भोग दु:खदायी ही भासित होते है और जैसे-जैसे सहज प्राप्त हुए इन बाह्य विषयों में अरुचि बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे आत्मानुभव में शनै: शनै: वृद्धि होती जाती है।

शंका - गुरु अथवा शास्त्र से ज्ञान नहीं होता है; किन्तु गुरु की वाणी सुने-समझे बगैर भी तो ज्ञान नहीं हो सकता है ?

समाधान - आचार्य कहते हैं कि अपनी आत्मा का वास्तविक गुरु स्वयं आत्मा ही है। जिसे अन्दर की पात्रता जगी है, अपने को पहिचानने की जिज्ञासा जगी है, उसे गुरु मिले बिना भी नहीं रहते । अरे ! यदि पात्रता जगी हो तो गुरु ही क्या; साक्षात् भगवान का भी योग बन जाता है। वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर वहाँ पर भगवान का योग पा लेता है। अपनी पात्रता हो और तदनुसार निमित्त न मिले ह्न ऐसा होता ही नहीं है, लेकिन निमित्त मिलने के पश्चात् स्वयं की पात्रता न हो तो उसमें निमित्त भी कुछ नहीं कर सकते ? अनन्त भवों में अनन्तबार यह जीव साक्षात् भगवान के समवशरण में गया, वहाँ भगवान की वाणी भी सुनी; किन्तु अपने स्वरूप के अवलोकन की रुचि नहीं हुई, इसलिए सब शून्य हो गया।

भगवान की वाणी में हेय-उपादेय तत्त्वों की बात आती है, उसे शिष्य बराबर ग्रहण करके आनन्दस्वरूप निज आत्मा को उपादेय और रागादि समस्त परभावों को हेय जानता है। इसप्रकार भेदज्ञान करे तो स्वयं ही स्वयं का गुरु बन जाता है और उससमय भगवान उसमें निमित्त कहने में आते हैं। **(क्रमश:)**

विभाव पर्याय और स्वभाव पर्याय

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार की 15 वीं गाथा पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथायें मूलत: इसप्रकार है ह्न

णरणारयतिरियसुरा पज्जाया ते विहावमिदि भणिदा।
कम्मोपाधिविवज्जियपज्जाया ते सहावमिदि भणिदा ।।15।।

मनुष्य, नारक, तिर्यंच और देवरूप पर्याय विभावपर्याय कही गई है और कर्मोपाधिरहित पर्याय स्वभावपर्याय कही गई है।

(गतांक से आगे...)

अब अर्थपर्यायरूप स्वभाव पर्याय का कथन करते हैं। इसमें कारण और कार्य ह्न ऐसे भेद लागू नहीं पड़ते।

'पूर्व सूत्र में कथित सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय के अभिप्राय से छह द्रव्यों की साधारण और सूक्ष्म ह्न ऐसी वे अर्थ पर्यायें शुद्ध जानना।'

(1) प्रथम, सहजशुद्धनिश्चयनय से कारणशुद्धपर्याय कही।

(2) पश्चात् शुद्धसद्भूतव्यवहारनय से कार्यशुद्धपर्याय कही।

(3) अब इस तीसरे बोल में सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय की बात ली है।

यह स्वभाव-अर्थपर्याय छहों द्रव्यों में त्रिकाल है। यहाँ छह द्रव्य की साधारण स्वभाव-अर्थपर्याय का वर्णन किया गया है तथा जीव के लिये खास स्वभावपर्याय तो कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय ही है, जिसका पहले वर्णन हो चुका है। यह जीव अधिकार है, इसलिये पहले उसकी ही कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय ह्न ऐसी स्वभावपर्यायों को बताया, तत्पश्चात् छहों द्रव्यों की साधारण स्वभावपर्याय की बात की। इसप्रकार शुद्धस्वभावपर्याय का वर्णन हुआ।

यहाँ कहते हैं कि **'शुद्धपर्याय के भेद संक्षेप में कहे'** अर्थात् विस्तार से भी उनका कथन हो सकता है। पहले उपयोग के भेद बतलाये थे, उनमें ज्ञान-दर्शन

गुण की अपेक्षा से पर्यायें लीं थीं। यहाँ जो कारणशुद्धपर्याय कही वह समूचे द्रव्य की सम्मिलित पर्याय है, इसमें ज्ञान-दर्शन की त्रिकाली एकरूप शुद्धपर्यायें भी समा जाती है। यहाँ भिन्न-भिन्न गुणों की पर्यायें जुदी न करके पूरे द्रव्य की कारणशुद्धपर्याय कही है। बाद में कार्यशुद्धपर्याय की बात की है।

उपर्युक्त अर्थपर्यायें क्षण-क्षण में उत्पाद-व्ययरूप हैं। इसीलिये उन पर सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय लागू पड़ता है। जो कारणशुद्धपर्याय हैं, उसमें षट्गुणी हानि-वृद्धि नहीं है। वह तो ध्रुव एकरूप धारा से है। उस पर नैगम, संग्रह या व्यवहार कोई भी नय लागू नहीं होता। वह त्रिकाल सहजशुद्धनिश्चयनय से है। ये अर्थपर्यायें षट्गुणी हानि-वृद्धिसहित हैं और समय-समय इनका उत्पाद-व्यय होता है। इनका सूक्ष्मस्वभाव तो आगमगम्य है। ये अर्थ पर्यायें सिद्ध में भी हैं और निगोद में भी हैं, परमाणु में भी हैं और स्कंध में भी हैं, सभी द्रव्यों में है। यह शुद्धपर्याय का संक्षिप्त वर्णन हुआ।

अब इसी को विस्तार से देखें तो जो कारणशुद्धपर्याय कही, उसमें सभी गुणों की पर्यायें आ गई अर्थात् प्रत्येक गुण में उस-उस गुण की एक तो कारणशुद्धपर्याय त्रिकाल वर्तती है, दूसरी कार्यशुद्धपर्यायें है, तीसरी अर्थपर्यायें कही गई है। तथा इनके अतिरिक्त क्षण-क्षण में राग-द्वेष अज्ञान आदि अशुद्धपर्यायें होती है, उन्हें यहाँ नहीं लिया। यहाँ तो अशुद्धपर्यायरूप में विभावव्यंजनपर्याय ही लेंगे।

प्रश्न : कारणशुद्धपर्याय साधक को क्या उपयोगी है ?

उत्तर : वह वर्तमान कारणरूप है और वर्तमान कार्य प्रकट करना है; इसलिये उस कारण का आश्रय करने पर कार्य प्रकट हो जाता है। द्रव्य से वह कारणपर्याय भिन्न नहीं है। द्रव्य तो त्रिकाल जैसे का तैसा पूरा का पूरा वर्तमान में वर्त रहा है। अरे जीव ! तू जब देखे तभी वर्तमान कारणपने से परिपूर्ण द्रव्य है। आलस्य से तूने देखा नहीं है। उस कारण का स्वीकार करने पर उसका आश्रय करते ही निर्मल कार्य प्रकट हो जाता है।

द्रव्य की स्व-आकार से वर्तती हुई त्रिकाल परिणति को यहाँ कारणशुद्धपर्याय कहा गया है, वही भूतार्थ है। संसार, मोक्षमार्ग और मोक्ष तो व्यवहार है, अभूतार्थ

है। त्रिकाली द्रव्य-गुण रूप पदार्थ और उसकी कारणरूप ध्रुवपरिणति ह्न ऐसा अभेद आत्मा ही है। उसके आश्रय से मोक्षमार्ग और मोक्ष हो जाता है।

अहो ! यह अलौकिक अचिन्त्य पदार्थ है। द्रव्य और गुण के स्व-आकार से वर्तती कारणशुद्धपर्याय है। यह द्रव्य-गुण और कारणशुद्धपर्यायरूप आत्मा ही भूतार्थ है। इसको मुख्य करके आश्रय कराने के लिये संसार, मोक्षमार्ग तथा मोक्षपर्याय को गौण करके व्यवहार कहा, अभूतार्थ कहा और त्रिकाली में उसका अभाव कहा।

'अब व्यंजनपर्याय कही जाती हैं ह्न जिससे व्यक्त हो, प्रकट हो, वह व्यंजन पर्याय है। किस कारण प्रकट होती है ? पटादि (वस्त्रादि) की भाँति चक्षुगोचर होने से प्रकट होती है अथवा सादि-सान्त मूर्त विजातीय विभावस्वभाववाली होने से, दिखकर नाश होने के स्वरूपवाली होने से प्रकट होती है।'

प्रथम आत्मा के आकार की बात करके पश्चात् जड़ देह के आकार की बात की है। व्यंजनपर्याय के चार प्रकार बतायेंगे।

'पर्यायी आत्मा के ज्ञान बिना ही आत्मा पर्यायस्वभाववाला होता है।'

त्रिकाली आत्मा पर्यायी है। पर्यायी अर्थात् द्रव्य के भान बिना यह जीव शरीरादि को एवं रागादि पर्याय को ही निजस्वरूप मानता है। इसीलिये वह अज्ञानीजीव पर्यायस्वभाववाला होता है। पर्याय को ही अपना स्वरूप माननेवाले को यहाँ पर्यायस्वभावी कहा है। अज्ञानी शरीरादि के संयोगवाली पर्याय को अपना स्वभाव मानता है; इसलिये अपनेआप को चतुर्गति में नये-नये शरीर धारण करके एक-एक समय की क्षणिक अल्पपर्याय जितना ही मानता है। शरीर के आकार से होनेवाली पर्याय ही मैं हूँ ह्न ऐसा मानने से ही उसे चार गति में भटकना पड़ता है। **(क्रमश:)**

निमित्त 'पर' है, उस पर दृष्टि रखने से दृष्टि पराधीन होती है। त्रिकाली उपादानरूप निज भगवान आत्मा 'स्व' है, उस पर दृष्टि रखने से दृष्टि स्वाधीन होती है। पराधीनता ही दुख है और स्वाधीनता ही सुख है; अत: सुखार्थी को तो स्वाधीनता ही श्रेयस्कर है। **ह्न निमित्तोपादान, पृष्ठ-37**

छहढाला प्रवचन

अपना हित चाहनेवालों..सुनो

ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्याण।
मोह महामद पियो अनादि, भूल आप को भरमत वादि ।।२।।

(सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान दौलतरामजीकृत छहढाला पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

(गतांक से आगे ...)

संसार में रुलते हुए जीव ने अनादि से मिथ्यात्वरूपी तीव्र मद्य का पान किया है। जैसे मदिरा पिया हुआ मनुष्य अपने आपको भूल जाता है, वैसे ही मोहरूपी मदिरा के पान से यह जीव अपने आत्म-स्वरूप को भूलकर, अपने भान रहित होकर चार गति में रुलता है। जैसे जीव का शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप अनादि से है, वैसे ही उसकी पर्याय में मोहदशा भी अनादि से चली आ रही है। वह मोहदशा जीव का सच्चा स्वरूप न होने से टल सकती है; परन्तु इस जीव ने अपने वास्तविक शुद्ध स्वरूप को भूलकर मिथ्यात्वरूपी तीव्र मदिरा का पान किया। इसलिये जैसे उन्मत्त मनुष्य भानरहित जहाँ कहीं भी गंदगी में पड़ा रहता है, वैसे ही मोह से उन्मत्त होकर यह जीव भी चारों गतियों में जहाँ-तहाँ रुलता रहा ह्न कभी दरिद्री तो कभी राजा, कभी देव तो कभी नारकी, कभी हाथी तो कभी एकेन्द्रिय ह्न ऐसी दशा में भ्रमण करता हुआ देह को ही अपना रूप समझकर महादुःखी होता रहा।

कितने ही लोग ऐसे होते हैं कि पूरे दिन कठिन मजदूरी करके दो-पाँच रुपये प्राप्त करें और बाद में रात्रि को एक-दो रुपये की शराब पीकर पागल होकर घूमें ! घर में बच्चों के लिए तो खाने को भी हो या न हो; किन्तु शराब वगैरह में पैसे लगाकर दुःखी होते हैं। वैसे ही संसार में रुलता हुआ यह जीव भी कठिनता से कभी मनुष्य होता है; परन्तु देहबुद्धिरूपी मोह-मदिरा में मनुष्यभव गँवाकर संसार में जहाँ-तहाँ भटकता फिरता है। जैसे कोई दयालु पुरुष उस शराबी को जगावे कि अरे भाई ! उठ ! तुझे यह शोभा नहीं देता ! यह आदत छोड़ दे और तेरे उत्तम घर

में जाकर बस ! वैसे ही यहाँ दयालु होकर श्रीगुरु मोहोन्मत्त जीवों को दुःख से छुड़ाने के लिए वीतराग-विज्ञान का उपदेश रहे हैं।

जीव को ही यह उपदेश दिया जाता है; क्योंकि यह जीव की अपनी ही भूल है। कर्म को उपदेश नहीं देते कि हे कर्म ! तू जीव को हैरान मत कर। यदि कर्म जीव को रुलावे या तारे, तो फिर जीव को करने का ही क्या रहा ? फिर उसे उपदेश भी क्यों दिया जाये ?

प्रथम तो स्वयं जीव ने मोहरूप भूल की है और उसे वह कर्म के ऊपर डालना चाहता है ह्न यह तो दूनी भूल है। जीव यदि अपनी भूल समझेगा तो सच्चे उद्यम से उस भूल को मेटेगा; परन्तु यदि भूल कर्मों ने कराई ह्न ऐसा समझेगा, तो उसको टालने का उपाय क्यों करेगा ? अतः जिज्ञासु को यह बात तो पहले ही समझना चाहिए कि जीव अपनी ही भूल से रुलता है और स्वयं ही उस भूल को टालकर भगवान बन सकता है। बालपोथी में भी आता है ह्न

* जीव क्यों रुला ? ..... भूल से।
* भूल किसकी ? ..... अपनी।
* कौन सी भूल ? अपने स्वरूप को भूला और पर को अपना माना।
* वह भूल कैसे टले ? स्व-पर का भेदज्ञान करने से।

पाठशाला में छोटे बच्चों को भी यह बात सिखलाना चाहिए कि ह्न

* जीव अज्ञान से हैरान होता है, कर्म जीव को हैरान नहीं करते।
* जीव अपनी भूल से दुःखी होता है, कर्म जीव को दुःखी नहीं करते।
* जीव की पहचान करना चाहिए, कर्म का दोष नहीं निकालना चाहिए।
* जीव को पहचानना धर्म है, कर्म का दोष निकालना अधर्म है।

एकेन्द्रिय जीव भी अपने ही भावकलंकरूप प्रचुर मोह के कारण निगोद के दुःख में पड़े हैं। गोम्मटसारजी में भी कहा है कि ह्न **'भावकलंकसुपउरा णिगोदवासं न मुंचंति'** (जीवकांड गाथा १९७)। आत्मा स्वयं आनन्दमूर्ति है; किन्तु निजस्वरूप के भूलने से दुःखी है, अब उस दुःख से छूटकर सुख कैसे हो ह्न यह उपदेश देते हैं; अतः हे जीव ! सुखी होने के लिए तू अपना स्वरूप समझ ! आत्मा की समझ का यह उत्तम अवसर आया है।

जैसे कोई मूढ़ मानव मद्यपान से मूर्च्छित होकर कहीं भी गिरा हो और कुत्ता आकर उसके मुँह में पेशाब भी कर जाये, फिर भी वह ऐसा माने कि मैं मीठा दूध पी रहा हूँ; वैसे ही मिथ्यात्वरूपी मद्यपान करके मोही जीव शरीर-स्त्री-पुत्र-लक्ष्मी आदि पर द्रव्य को अपना मानता हुआ उसमें राग करके खुश होता है; उसको वेदन तो है राग की आकुलता का; किन्तु मोह के कारण मानता है कि मैं सुख का अनुभव कर रहा हूँ। ऐसा मोह निरर्थक है, वृथा है; उस मोह से जीव महादुःखी होकर चार गति में भ्रमण करता है। भाई ! अब यह भवभ्रमण रोकने के लिए और मोक्ष पाने के लिए श्रीगुरु का उपदेश ध्यान देकर सुन।

जो मोक्षार्थी भवभ्रमण से थकित हैं, उनको श्रीगुरु मोक्ष का उपदेश सुनाते हैं। भाई ! मिथ्यात्व के कारण तूने चार गति में कैसा तीव्र दुःख पाया। यह जानकर अब तो मोह को छोड़। अरे ! दुःख के सागर में तू मोह के वशीभूत होकर गोता खा रहा है, हजारों तरह के शारीरिक एवं मानसिक दुःखों का वेदन कर रहा है; उनसे छुटकारा कैसे हो ह्न इसकी यह बात है।

जीव अपनी भूल से चारों गति में अपने चैतन्य-परमेश्वर को साथ लेकर ही घूम रहा है; किन्तु अन्तर में स्वयं मैं ही परमेश्वर स्वरूप से विराज रहा हूँ ह्न ऐसा नहीं देखता। यह अज्ञानी जीव 'मैं संयोग से भिन्न ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ' ह्न ऐसा न जानकर, 'देह और संयोग ही मैं हूँ' ह्न ऐसा मानता है तथा अनुकूल-प्रतिकूल संयोग में ही मोहित होता है। जैसे मदिरापान करनेवाले का कोई ठिकाना नहीं कि वह कब, कहाँ जाकर गिरेगा ? ऐसा भी हो सकता है कि वह विष्टा में भी जाकर गिरे और फिर उसमें सुख माने; वैसे ही अज्ञानी-मोही जीव का कोई ठिकाना नहीं कि कब किस भव में रुलेगा ? चारों गति में जहाँ-तहाँ रुकता हुआ कभी पुण्य से स्वर्ग में जाता है तो कभी पाप से नरक में जाता है एवं कभी मनुष्य और कभी तिर्यंच होता है; इसप्रकार मोह से आप अपने को भूलकर संसार में रुल रहा है। निगोद से लेकर नवमें ग्रैवेयक तक के मिथ्यादृष्टि जीव मोहवश दुःखी हैं; सुख जिसमें नहीं, उसमें भ्रम से सुख मानकर भ्रमण कर रहे हैं और सुख जिसमें है, उसको नहीं जानते।

ऐसे अज्ञान से जीव कहाँ-कहाँ रुला और कैसे-कैसे दुःख सहे, यह आगे कहेंगे।

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचचा क समय ावाभन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : क्रमबद्ध के वास्तविक रहस्य को न समझनेवाला अज्ञानी क्रमबद्ध के गीत गाते रहने पर भी क्या भूल करता है ?

उत्तर : एक व्यक्ति कहता है कि पर्याय को क्रमबद्ध स्वीकार करने से नियतवाद हो जाता है और दूसरा व्यक्ति कहता है कि क्रमबद्ध में मुझे राग आनेवाला था, वह आ गया। वास्तविक रूप में ये दोनों ही जीव भूल में हैं, मिथ्यादृष्टि हैं। दोनों ने ही मिथ्यात्व को पुष्ट करके निगोद का मार्ग अपनाया है और जिसकी दृष्टि में क्रमबद्ध यथार्थ रीति से बैठ गई है, उसकी दृष्टि पर्याय से हटकर आनन्दमय आत्मा के ऊपर है, उसके क्रमबद्ध में राग आने पर भी वह मात्र ज्ञाता ही है।

ज्ञानानन्दस्वभाव की दृष्टिपूर्वक जो राग आता है, उस राग को भी जो दुःखरूप मानता है, उस जीव ने ही क्रमबद्ध को यथार्थ माना है। वह जीव उस आनन्द के साथ अपने रागरूप दुःख का मिलान करता है, तब उसे प्रतिभासित होता है कि अरे ! यह राग दुःखरूप है। इसप्रकार क्रमबद्ध को माननेवाला आनन्द की दृष्टिपूर्वक राग को दुःखरूप जानता है, उसे राग की मिठास उड़ गई है। जिसे राग में मिठास पड़ी हुई है और पहले जो अज्ञान दशा में राग के टालने की चिंता थी, वह भी क्रमबद्ध का पाठ पढ़कर मिट गई है।

'राग मेरा नहीं' ह्न ऐसा कहे और आनन्दस्वरूप की दृष्टि न हो, तो उसने मिथ्यात्व की ही वृद्धि की है। भाई ! यह तो कच्चे पारा जैसा वीतराग का सूक्ष्म रहस्य है। अन्तर में पचावे तो वीतरागता की पुष्टि हो और उसका रहस्य न समझे तो उलटा मिथ्यात्व ही पुष्ट हो।

प्रश्न : यह जीव, अजीव का तो कार्य नहीं कर सकता; किन्तु अपना परिणाम तो जैसा चाहे वैसा कर सकता है ?

उत्तर : जीव अपना परिणाम भी चाहे जैसा नहीं कर सकता; किन्तु जो

परिणाम क्रमसर जैसा होना है, वैसा ही होगा; आगे-पीछे, जैसा-तैसा करना चाहे तो भी नहीं होगा। जीव तो अकेला ज्ञायकभाव मात्र है। जाननहारा और केवल जाननहारा ही है।

प्रश्न : क्रमबद्ध का निर्णय कैसे हो, उसके द्वारा क्या सिद्ध करना है ? इसका तात्पर्य क्या है ?

उत्तर : क्रमबद्धपर्याय के सिद्धान्त का मूल तो अकर्त्तापना सिद्ध करना है। जैनदर्शन अकर्त्तावादी है। आत्मा परद्रव्य का तो कर्त्ता है ही नहीं, राग का भी कर्त्ता नहीं और पर्याय का भी कर्त्ता नहीं है। पर्याय अपने ही जन्मक्षण में अपने ही षट्कारक से स्वतन्त्ररूप से जो होनेयोग्य है, वही होती है; परन्तु इस क्रमबद्ध का निर्णय पर्याय के लक्ष्य से नहीं होता।

क्रमबद्ध का निर्णय करने जाये तो शुद्धचैतन्य ज्ञायकधातु के ऊपर दृष्टि जाती है और तभी जाननेवाली जो पर्याय प्रगट होती है, वह क्रमबद्धपर्याय को जानती है। क्रमबद्धपर्याय का निर्णय स्वभाव-सन्मुखता के अनन्त पुरुषार्थपूर्वक होता है। क्रमबद्धपर्याय का तात्पर्य वीतरागता है और वीतरागता पर्याय में तभी प्रकट होती है, जब वीतराग स्वभाव के ऊपर दृष्टि जाती है।

समयसार गाथा ३२० में कहा है कि ज्ञान बंध और मोक्ष का कर्त्ता नहीं है; किन्तु ज्ञाता ही है। आहाहा ! मोक्ष को ज्ञान जानता है। मोक्ष को करता है ह्न ऐसा नहीं कहा। अपने में होनेवाली क्रमसर पर्याय को करता है ह्न ऐसा नहीं; किन्तु मात्र जानता है ह्न ऐसा कहा है। गजब बात है भाई !

शकरकन्दवत् आत्मा आनन्दकन्द है

जैसे शकरकन्द के ऊपर की छाल शकरकन्द नहीं है। छाल को निकालने पर अन्दर जो मिठास का पिण्ड है, वह शकरकन्द है । उसीप्रकार भगवान आत्मा में जो शुभाशुभभाव होते हैं, वे ऊपर की छालवत् हैं, वे आत्मा नहीं हैं। शुभाशुभभाव से भिन्न अन्दर जो आनन्दकन्द प्रभु विराजता है, वह आत्मा है। शुभाशुभभाव का लक्ष्य छोड़कर अन्तर्दृष्टि करने पर जो आत्मानुभूति प्रगट होती है - वही सम्यग्दर्शन है, धर्म है। **- प्रवचनरत्नाकर, भाग : ४, पृष्ठ : १०२**

देश-विदेश में दशलक्षण महापर्व धूम-धाम से मनाया

दिनांक 28 अगस्त से 6 सितम्बर, 2006 तक जैन परम्परानुसार मनाये जानेवाले सार्वभौमिक एवं त्रैकालिक दसलक्षण महापर्व को देश-विदेश में बड़ी धूम-धाम से मनाया गया। पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा 536 स्थानों पर विद्वान भेजे गये। पर्व के दौरान सभी स्थानों पर जैनमंदिरों में पूजन-विधान, प्रवचन, प्रौढ एवं बालकक्षा, भक्ति, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि के माध्यम से महती धर्म प्रभावना हुई। देश के कोने-कोने से प्राप्त समाचारों में से कुछ समाचार यहाँ संक्षेप में प्रकाशित किये जा रहे है। विस्तृत समचार हेतु जैनपथप्रदर्शक (पाक्षिक) का सितम्बर (द्वितीय) एवं अक्टूबर (प्रथम),06 अंक देखिये।

*** कोटा (राज.) :** श्री दिग. जैन मुमुक्षु मण्डल के तत्त्वावधान में श्री कुन्दकुन्द कहान स्वाध्याय भवन में पर्वाधिराज दसलक्षण महापर्व पर आदरणीय बाबू जुगलकिशोरजी युगल के नियमसार की गाथा-३८ पर मार्मिक प्रवचनों का दसों दिन लाभ मिला। आपके अतिरिक्त पण्डित मनोजकुमारजी शास्त्री करेली के समयसार, रहस्यपूर्ण चिट्ठी एवं दस धर्मों पर प्रवचन हुये। क्षमावाणी के दिन बाबूजी का विशेष प्रवचन हुआ।

*** इन्दौर (म.प्र.) :** यहाँ साधनानगर स्थित श्री पंचबालयति जैन मंदिर में श्री दि. जैन कुन्दकुन्द परमागम ट्रस्ट के अनेक वर्षों के अथक् प्रयास से इस वर्ष तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल जयपुर का आगमन हुआ। महापर्व के अवसर पर प्रतिदिन रात्रि में डॉ. भारिल्ल के धर्म के दशलक्षण पर रोचक शैली में हृदयग्राही प्रवचन हुये, जिनका प्रतिदिन भास्कर टी.वी. द्वारा प्रसारण किया गया। प्रवचनों में लगभग 17-1800 साधर्मियों की उपस्थिति रहती थी। विशाल पण्डाल के अतिरिक्त जिनमंदिर में भी बड़ी स्क्रीन लगाई गई थी। यहाँ के अतिरिक्त आपका एक-एक प्रवचन लश्करी मंदिर, स्वाध्याय भवन कंचनबाग एवं रामचन्द्र नगर में भी हुआ।

ज्ञातव्य है कि पर्व के मध्य एक दिन डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल द्वारा 17 वर्ष की आयु में लिखित पश्चाताप (खण्डकाव्य) की सुन्दर प्रस्तुति की गई तथा एक दिन विशाल पण्डाल में बड़ी स्क्रीन पर समयसार सप्ताह के रूप में आचार्य विद्यानन्दजी महाराज के सान्निध्य में हुये डॉ. भारिल्ल के प्रवचन का प्रसारण किया गया।

यहाँ प्रतिदिन प्रात: सामूहिक पूजन के पश्चात् पण्डित संजीवकुमारजी गोधा जयपुर के प्रवचनसार पर मार्मिक प्रवचन हुये तथा प्रवचनोपरान्त आप ही के द्वारा प्रतिदिन तत्त्वार्थसूत्र के एक-एक अध्याय का विशेष विवेचन किया गया।

दोपहर में गोधाजी द्वारा करणानुयोग की विशेष कक्षा ली गई तथा सायंकाल सामायिक एवं भक्ति के उपरान्त डॉ. भारिल्ल के प्रवचन के पूर्व पण्डित संजीवजी गोधा ने दस दिनों में निश्चय-व्यवहार, द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक, ज्ञाननय, शब्दनय, अर्थनय, नैगमादि 7 नय एवं 47 नयों के सारगर्भित विवेचन से नयचक्र की सम्पूर्ण विषय वस्तु से जनसमुदाय को परिचय कराया।

दसलक्षण पर्व के अवसर पर यहाँ लगभग 70 हजार रुपये का सत्साहित्य घर-घर पहुँचा।

पर्व के पश्चात् क्षमावाणी पर्व के अवसर पर श्री विमलदादा झांझरी एवं सकल जैन समाज उज्जैन के विशेष आग्रह पर जैन मंदिर, क्षीरसागर, उज्जैन में डॉ. भारिल्ल का प्रासंगिक प्रवचन हुआ। इसके पूर्व पण्डित संजीवकुमारजी गोधा के प्रवचन का लाभ भी उपस्थित जन समुदाय को मिला।

*** अहमदाबाद (नवरंगपुरा) :** यहाँ समाज के विशेष अनुरोध पर इस वर्ष श्री टोडरमल सि. महाविद्यालय के प्राचार्य पण्डित श्री रतनचन्दजी भारिल्ल जयपुर के पधारने से अत्यधिक धर्मप्रभावना हुई। मन्दिर में स्थान सीमित होने से सभी कार्यक्रम डी.के. पटेल हॉल में सम्पन्न हुये।

प्रात: पूजन-विधान के पश्चात् आधा घण्टा गुरुदेवश्री का टेप प्रवचन तत्पश्चात् भारिल्लजी के नींव का पत्थर पुस्तक के आधार पर विविध विषयों पर तथा रात्रि में दसधर्मों पर मार्मिक प्रवचन हुये। दोपहर में श्रीमती कमलाजी भारिल्ल द्वारा ली गई मोक्षमार्ग प्रकाशक की कक्षा खूब सराही गई। कार्यक्रम में 1500 से भी अधिक लोगों की उपस्थिति रही। स्थानीय विद्वान दीपकभाई एवं तपिश शास्त्री द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम कराये गये।

*** शिकागो (अमेरिका) :** यहाँ श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय की छात्रा एवं डॉ.भारिल्ल की दोहिती विदुषी कु. अनुप्रेक्षा जैन मुम्बई द्वारा तीनों समय विभिन्न विषयों पर प्रवचनों के माध्यम से धर्म प्रभावना हुई। ज्ञातव्य है कि कु. अनुप्रेक्षा धर्मप्रचारार्थ अमेरिका में भ्रमण कर रही है। आपके श्वेताम्बर पर्यूषण में मिलवौकी तथा दसलक्षण के पश्चात् अटलांटा व डलास में प्रवचन हो चुके हैं। अब वे लन्दन में पहुँच गई है और उनके दिग. जैन मंदिर में दोनों समय प्रवचन हो रहे हैं। दोपहर में महिलाओं की कक्षा भी चल रही है। आपके प्रवचनों को सभी जगह बहुत पसन्द किया जा रहा है।

ज्ञातव्य है कि **नैरोबी (अफ्रीका)** में पण्डित शैलेषभाई शाह तलोद; **वाशिंगटन डी.सी.** में पण्डित दिनेशभाई शाह एवं डॉ. उज्ज्वलाजी शाह मुम्बई; **बैंकाक** में पण्डित भरतभाई शाह मुम्बई; **ह्यूस्टन** में पण्डित विपिनजी शास्त्री मुम्बई तथा **लन्दन** में पण्डित ज्ञायकजी शास्त्री राजकोट द्वारा धर्मप्रभावना हुई।

*** जयपुर (श्री टोडरमल स्मारक भवन) :** यहाँ प्रात: दशलक्षण विधान के पश्चात् गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन, छात्र प्रवचन एवं पण्डित पीयूषजी शास्त्री के समयसार निर्जरा अधिकार पर मार्मिक प्रवचन हुये। दोपहर में डॉ. भारिल्ल के सी.डी. प्रवचन एवं छात्र प्रवचन के उपरान्त पण्डित विक्रान्तजी पाटनी झालरापाटन द्वारा इष्टोपदेश की कक्षा ली गई। सायंकाल बाबू जुगलकिशोरजी 'युगल' के सी.डी. प्रवचन के उपरान्त जिनेन्द्र भक्ति होती थी। रात्रि में छात्र प्रवचन के उपरान्त डॉ. श्रीयांसजी शास्त्री के दस धर्मों पर मार्मिक प्रवचन हुये।

दिनांक 8 सितम्बर को क्षमावाणी पर्व पर आयोजित सभा में मुख्य वक्ता के रूप में डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का मार्मिक उद्बोधन हुआ।

*** जयपुर (राज.) :** यहाँ राजस्थान जैन सभा द्वारा **बड़े दीवानजी के मंदिर** में आयोजित

व्याख्यानमाला में प्रतिदिन रात्रि में पण्डित पीयूषकुमारजी शास्त्री के दसलक्षण धर्मों पर मार्मिक प्रवचन हुये एवं पण्डित सचिनजी शास्त्री द्वारा प्रश्न-मंच सम्पन्न हुआ। ✲ **तेरापंथी बड़ा मंदिर** में प्रतिदिन प्रात: डॉ. श्रीयांसजी शास्त्री के समयसार पर मार्मिक प्रवचन हुये। रात्रि में पण्डित देवेन्द्रजी शास्त्री अकाझिरी एवं पण्डित गजेन्द्रजी शास्त्री के प्रवचन हुये। ✲ **आदर्शनगर मंदिर** में प्रात: पण्डित शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल के समयसार पर मार्मिक प्रवचन एवं रात्रि में पण्डित दिनेशजी शास्त्री के दसलक्षण धर्मों पर प्रवचन हुये। ✲ **महावीरनगर** दि. जैन मंदिर में प्रतिदिन पण्डित शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल के दसधर्मों पर विशेष प्रवचन हुये। ✲ **वरुणपथ, मानसरोवर** में डॉ. नरेन्द्रजी जैन के प्रतिदिन दोपहर में तत्त्वार्थसूत्र के प्रत्येक अध्याय पर तथा रात्रि में दसलक्षण धर्मों पर मार्मिक प्रवचन हुये।

✲ **भोपाल (म.प्र.) :** यहाँ दि. जैन मुमुक्षु मण्डल भोपाल-चौक के तत्त्वावधान में पण्डित विमलदादाजी झांझरी के प्रात: समयसार व रात्रि में पंचाध्यायी के आधार से दसधर्मों पर मार्मिक प्रवचन हुये। प्रतिदिन तत्त्वार्थसूत्र की वाचना के अतिरिक्त दोपहर में ब्र.समताजी झांझरी द्वारा पंचभाव की प्रौढ कक्षा व सायंकाल बालकक्षा ली गई तथा आपके द्वारा ही रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रम कराये गये।

✲ **अलवर (राज.) :** यहाँ श्री रत्नत्रय दि. जिनमंदिर, चेतन एंक्लेव में बा.ब्र. पण्डित जतीशचन्दजी शास्त्री के निर्देशन में पण्डित कान्तिलालजी इन्दौर, पण्डित अजितजी शास्त्री अलवर तथा पण्डित सचिनजी शास्त्री गढ़ी द्वारा भक्तामर विधान किया गया। इस अवसर पर पण्डित जतीशजी शास्त्री के प्रात: मोक्षमार्गप्रकाशक तथा सायं दश धर्म पर मार्मिक प्रवचनों के अतिरिक्त पण्डित प्रवीणजी शास्त्री जयपुर के तीनों समय बारह भावना, छहढ़ाला तथा मोक्षमार्गप्रकाशक पर हुए प्रवचनों का समाज को लाभ मिला। यहाँ निर्माणाधीन जिनमंदिर हेतु १५ से २१ फरवरी, २००७ तक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के आयोजन की घोषणा की गई।

✲ **हेरले (महा.) :** यहाँ ब्र. यशपालजी जैन जयपुर के प्रात: सोलह कारण भावना एवं रात्रि में दसधर्म पर मार्मिक प्रवचन हुये। साथ ही पर्व के मध्य समाज के विशेष आग्रह पर रुकडी, हेरले व मजले में भी आपके प्रवचनों का लाभ मिला तथा पर्व के पूर्व एवं पश्चात् मुम्बई (मलाड), घटप्रभा, बेलगांव आदि स्थानों पर भी आपके प्रवचन हुये।

✲ **बडौदा (गुज.) :** यहाँ पण्डित प्रकाशदादा झांझरी उज्जैन के प्रात: समयसार के संवर अधिकार पर और रात्रि में दसधर्मों पर मार्मिक प्रवचन हुये।

✲ **कोलकाता (पद्मोपुकुर) :** यहाँ श्री महावीर दि. जैन मंदिर में पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली के प्रात: समयसार एवं रात्रि में मोक्षमार्गप्रकाशक पर मार्मिक प्रवचन हुये। इसप्रसंग पर पण्डित अभिनयजी शास्त्री जबलपुर के निर्देशन में दसलक्षण मण्डल विधान कराया गया। सायंकाल पण्डित मेहुलजी मेहता, पण्डित चिराग जैन एवं कु.प्रज्ञा जैन देवलाली द्वारा बालकक्षा ली गई। रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रम कराये गये।

✲ **अशोकनगर (म.प्र.) :** यहाँ जैन मंदिर में पण्डित श्री वीरेन्द्रकुमारजी जैन आगरावालों के प्रात: प्रवचनसार, दोपहर में समयसार एवं रात्रि में मोक्षमार्ग प्रकाशक पर मार्मिक प्रवचनों से समाज लाभान्वित हुआ। रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रम कराये गये। **ह्न अरुण लालोनी**

✲ **विदिशा (म.प्र.) :** यहाँ किला अन्दर स्थित श्री दि.जैन मंदिर में पण्डित प्रदीपकुमारजी झांझरी उज्जैन के प्रात: समयसार व रात्रि में दसधर्मों पर सारगर्भित प्रवचन हुये। दोपहर में मोक्षमार्ग प्रकाशक पर प्रवचन व तत्त्वचर्चा की गई। इस अवसर पर दसलक्षण मण्डल विधान व रात्रि में सांस्कृति कार्यक्रम श्री राजकुमारजी एवं श्रीमती सुधाजी द्वारा कराये गये।

✲ **बैंगलौर (कर्ना.) :** यहाँ श्री आदिनाथ दि. जैन मंदिर में पण्डित शांतिकुमारजी पाटील के प्रात: समयसार एवं रात्रि में योगसार प्राभृत के आधार से दसधर्मों पर प्रवचन हुये। सायंकाल विदुषी कु.परिणति पाटील द्वारा बालकक्षा ली गई तथा रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रम कराये गये।

✲ **इन्दौर (म.प्र.) :** यहाँ माणक चौक स्थित श्री दिगम्बर जैन मंदिर में पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा के प्रात: समयसार, दोपहर में भक्तामर एवं रात्रि में दसलक्षण धर्मों पर मार्मिक प्रवचन हुये। सम्पूर्ण आयोजन श्री विमलचन्दजी चौधरी एवं श्री इन्दरमलजी सौगाणी के निर्देशन में हुआ।

✲ **इन्दौर (रामचन्द्रनगर) :** यहाँ पण्डित अनेकान्तजी भारिल्ल के प्रात: देव के स्वरूप पर एवं दोपहर में तत्त्वार्थ सूत्र पर सारगर्भित प्रवचन हुए। रात्रि में दशधर्मों पर प्रवचन हुये। अल्पवय में ओजपूर्ण शैली में किये गये प्रवचनों की सभी ने सराहना की।

✲ **इन्दौर-देवास नाका मंदिर** में डॉ. राजेन्द्रजी बंसल अमलाई के प्रतिदिन प्रात: मोक्षमार्ग प्रकाशक पर एवं रात्रि में रत्नकरण्डश्रावकाचार-दसलक्षण धर्म पर सारगर्भित प्रवचन हुये। ✲ **न्यू पलासिया स्थित** श्री दि. जैन कुन्दकुन्द कहान स्वाध्याय भवन में ब्र. कैलाशचन्दजी 'अचल' ललितपुर के तीनों समय मार्मिक प्रवचनों का लाभ मिला। ✲ **नरसिंहपुरा मंदिर** में पण्डित सतीशजी कासलीवाल द्वारा तीनों समय द्रव्य-गुण-पर्याय एवं दसधर्म आदि विषयों पर प्रवचन हुये। ✲ **मारवाड़ी मंदिर** में पण्डित निर्मलजी जैन सागर के दोनों समय प्रवचन हुये। ✲ **गांधीनगर में** पण्डित विमलचन्दजी जैन अशोकनगर के तथा **गोराकुण्ड लश्करी मंदिर** में पण्डित दिलीपजी बाकलीवाल के सारगर्भित प्रवचनों का लाभ मिला।

✲ **मुम्बई (दादर) :** यहाँ ध्रुवधाम-बांसवाड़ा के निर्देशक पण्डित राजकुमारजी शास्त्री के प्रात: दसलक्षण विधान के पश्चात् नियमसार के शुद्धभाव अधिकार पर एवं रात्रि में भिण्ड-युवा मण्डल द्वारा जिनेन्द्र भक्ति के पश्चात् इष्टोपदेश पर सारगर्भित प्रवचन हुये। रात्रि में डॉ. ममताजी जैन एवं श्री अतुलजी जैन के निर्देशन में सांस्कृतिक कार्यक्रम सम्पन्न हुये।

✲ **मुम्बई (भूलेश्वर) :** यहाँ श्री चन्द्रप्रभ दि. जैन मंदिर में पण्डित संजयजी शास्त्री जेवर के दोनों समय आत्मानुभूति की कला एवं दसधर्म आदि विषयों पर रोचक शैली में प्रवचन हुये।

✲ **मुम्बई (एवरशाइन नगर) :** यहाँ पण्डित स्वानुभवजी शास्त्री के दोनों समय प्रासंगिक प्रवचनों के अतिरिक्त, श्री पंचमेरु विधान का आयोजन किया गया। सायंकाल बाल कक्षा एवं

सांस्कृतिक कार्यक्रमों का संचालन श्रीमती पूजा भारिल्ल ने किया।

✻ **मुम्बई** के विभिन्न उपनगरों में डॉ. शुद्धात्मप्रभा टडैया द्वारा **अन्धेरी (ई.)** में सायंकाल दसलक्षण धर्मों पर प्रवचन हुये। पण्डित अध्यात्मप्रकाशजी भारिल्ल के प्रात: **जोगेश्वरी (ई.)** एवं रात्रि में **भाण्डुक (वे.)** में मार्मिक प्रवचन हुये तथा श्रीमती अल्पना भारिल्ल के रात्रि में **जोगेश्वरी (ई.)** में दसलक्षण धर्मों पर सारगर्भित प्रवचनों का लाभ मिला।

✻ **तलौद (गुज.) :** यहाँ विदुषी पुष्पाजी झांझरी उज्जैन के प्रात: समयसार व रात्रि में रत्नकरण्ड श्रावकाचार के आधार से दसधर्मों पर प्रवचन हुये। दोपहर में रत्नकरण्डश्रावकाचार के आधार से ध्यान पर कक्षा ली गई। सायंकाल बालकक्षा व रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रम विदुषी ज्ञानधाराजी झांझरी ने सम्पन्न कराये।

✻ **हिम्मतनगर (गुज.) :** यहाँ प्रतिदिन दसलक्षण मण्डल विधान के पश्चात् पण्डित अरिहंतप्रकाशजी झांझरी उज्जैन के समयसार कलश, दोपहर में बारह भावना व रात्रि में रत्नकरण्ड श्रावकाचार पर मार्मिक प्रवचन हुये। श्रीमती अमीधाराजी झांझरी द्वारा सायंकाल बालकक्षा व रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रम कराये गये।

✻ **कोल्हापुर (महा.) :** यहाँ पण्डित जितेन्द्रजी राठी जयपुर द्वारा प्रात: समयसार, दोपहर में तत्त्वार्थसूत्र, रात्रि में भक्ति के पश्चात् दसधर्मों पर सारगर्भित प्रवचन हुये। इसके अतिरिक्त हेरले एवं मजले में भी आपके दो-दो प्रवचनों का लाभ मिला।

✻ **लुधियाना (पंजाब) :** यहाँ नवनिर्मित चैत्यालय में पहली बार पण्डित सुदीपजी शास्त्री बरगी के सानिध्य में दशलक्षण पर्व धूमधाम से मनाया गया। प्रात: पूजन के दौरान पूजन संबंधी प्रवचन हुए। सायंकालीन दशधर्मों पर मार्मिक प्रवचनों के पश्चात् सांस्कृतिक कार्यक्रम कराये गये। प्रतिदिन स्वाध्याय की परंपरा भी प्रारंभ की गई।

✻ **किशनगढ़ (राज.) :** यहाँ नवनिर्मित महावीर जिनालय में पण्डित अरविन्दजी शास्त्री सुजानगढ़ के प्रतिदिन प्रात: दसलक्षण मण्डल विधान के पश्चात् समयसार पर मार्मिक प्रवचन हुये। दोपहर में मोक्षमार्ग प्रकाशक एवं तत्त्वार्थसूत्र पर कक्षा ली गई। सायंकाल जिनेन्द्र भक्ति के उपरान्त दसलक्षण धर्मों पर प्रवचन एवं तदुपरान्त विविध सांस्कृतिक कार्यक्रम कराये गये।

✻ **खुरई (म.प्र.) :** यहाँ श्री पार्श्वनाथ दि. जैन बड़ा मंदिर में पण्डित रमेशचन्दजी शास्त्री जयपुर के प्रात: मोक्षमार्ग प्रकाशक एवं रात्रि में दशधर्म पर मार्मिक प्रवचन हुए। दोपहर में विदुषी कु. स्वाति जैन जयपुर द्वारा भक्तामर स्तोत्र एवं सायंकाल बालवर्ग की कक्षा ली गई। प्रतिदिन जिनेन्द्र भक्ति एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम होते थे।

✻ **मण्डला (म.प्र.) :** यहाँ श्री महावीर दि. जैन मन्दिर में पण्डित धर्मेन्द्रजी शास्त्री जयपुर के सानिध्य में दशलक्षण पर्व हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। प्रात: पूजनोपरांत धर्म क्या? कहाँ ? कब ? कैसे ? और क्यों? इत्यादि विषयों पर रोचकशैली में प्रवचन हुए। दोपहर में नाटक समयसार एवं रात्रि में दशधर्मों पर प्रवचनों से समाज को लाभ मिला।

✻ **तीर्थधाम मंगलायतन(अलीगढ़) :** यहाँ गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन के अतिरिक्त ब्र. अभिनन्दनजी शास्त्री, पण्डित राकेशजी शास्त्री, पण्डित अशोकजी लुहाड़िया एवं श्री पवनजी जैन द्वारा समयसार, तत्त्वार्थसूत्र एवं दसधर्म पर प्रवचन हुये। प्रतिदिन प्रात: दसलक्षण मण्डल विधान का आयोजन हुआ। रात्रि में आदिनाथ विद्यानिकेतन के छात्रों द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम कराये गये। ज्ञातव्य है कि प्रतिदिन **सासनी नगर** स्थित श्री दिग. जैन मंदिर में पण्डित अशोकजी लुहाड़िया के दसधर्मों पर मार्मिक प्रवचन हुये। प्रात: प्रासंगिक पूजन-विधान होता था।

✻ **उदयपुर (राज.) :** यहाँ श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल में प्रतिदिन पण्डित देवेन्द्रजी बिजौलिया के समयसार एवं दसधर्म पर प्रवचनों के अतिरिक्त गोष्ठी का आयोजन किया गया; जिसमें पण्डित देवेन्द्रकुमारजी जैन द्वारा अनेकान्त : जैनदर्शन के परिप्रेक्ष्य में एवं प्रो.पारसमल अग्रवाल द्वारा अनेकान्त और आधुनिक विज्ञान पर विचार व्यक्त किये गये। गोष्ठी की अध्यक्षता डॉ. उदयचन्दजी जैन ने की।

✻ **मोरबी (गुज.) :** यहाँ पण्डित सुधीरजी शास्त्री के तीनों समय क्रमश: मोक्षमार्ग प्रकाशक, दसधर्म एवं तत्त्वज्ञान पाठ. भाग-१ के आधार पर प्रवचन हुये।

✻ **कानपुर (उ.प्र.) :** यहाँ दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल के तत्त्वावधान में पण्डित अनिलजी शास्त्री 'धवल' के प्रासंगिक प्रवचन हुये। साथ ही दो दिन पण्डित अशोकजी लुहाड़िया के प्रवचनों का लाभ मिला।

✻ **सेमारी (राज.) :** यहाँ श्री महावीर दिगम्बर जिन चैत्यालय में पण्डित संजयकुमारजी शास्त्री अरथुना के तीनों समय क्रमश: समयसार, रत्नकरण्ड श्रावकाचार व दस धर्मों पर मार्मिक प्रवचन हुये। दोपहर में कल्पद्रुम मण्डल विधान एवं रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया गया।

✻ **कोयम्बटूर (तमिलनाडु) :** यहाँ श्री दि. जैन मण्डल ट्रस्ट के तत्त्वावधान में पण्डित अखिलेशजी शास्त्री द्वारा प्रात: छहढाला एवं रात्रि में दसलक्षण धर्म पर मार्मिक प्रवचन हुये। सायंकाल बालकक्षा व सांस्कृतिक कार्यक्रम भी कराये गये।

पण्डित रतनचन्द भारिल्ल 'शिक्षारत्न' से सम्मानित

श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के प्राचार्य पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल को राजस्थान युवा छात्र संस्था, जयपुर की ओर से शिक्षक दिवस के अवसर पर शिक्षाजगत में उत्कृष्ट कार्य के लिये '**शिक्षा-रत्न**' की उपाधि से सम्मानित किया गया। यह सम्मान अनन्तश्री विभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं द्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराज के करकमलों से दिया गया। यह सम्मान राजस्थान में पहली बार जैन शिक्षक (विद्वान) को प्रदान किया गया है। **ह्न डॉ. पीयूष त्रिवेदी**